Chapter बारह

मोहिनी-मूर्ति अवतार पर शिवजी का मोहित होना

इस अध्याय में वर्णन हुआ है कि किस तरह भगवान् के सुन्दर मोहिनी-मूर्ति अवतार को देखकर शिवजी मोहित हो गये और बाद में किस तरह उन्हें होश आया। जब शिवजी ने आकर्षक स्त्री (मोहिनी) रूपी भगवान् हरि की लीलाओं के विषय में सुना तो वे अपने बैल पर सवार होकर भगवान् को देखने चल पड़े। वे अपनी पत्नी उमा तथा अपने सेवक भूतगणों के साथ भगवान् के चरणकमलों के पास जा पहुँचे। उन्होंने सर्वव्यापी, विराट रूप, सृष्टि के परम नियन्ता, परमात्मा, सबों के आश्रय तथा पूर्ण स्वतंत्र *सर्वकारण-कारणम्* भगवान् को नमस्कार किया। इस प्रकार उन्होंने भगवान् का सही-सही

वर्णन करते हुए उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी इच्छा अभिव्यक्त की। भगवान् अपने भक्तों पर बड़े दयालु होते हैं। अतएव अपने भक्त शिवजी की इच्छा-पूर्ति के लिए उन्होंने अपनी शक्ति का विस्तार किया और अपने आपको एक अत्यन्त सुन्दर एवं मोहक स्त्री के रूप में प्रकट किया। इस रूप को देखकर शिवजी भी मोहित हो गये। बाद में भगवत्कृपा से वे अपने आपको नियंत्रित कर सके। इससे यह प्रदर्शित होता है कि जगत में भगवान् की माया शक्ति से इस भौतिक जगत में हर व्यक्ति स्त्री के रूप पर मोहित होता है। किन्तु पुनः भगवत्-कृपा से वह माया के प्रभाव को जीत सकता है। यह भगवान् के सर्वोच्च भक्त शिवजी से प्रकट हो गया। पहले तो वे मोहित हो गये, किन्तु बाद में भगवत्कृपा से उन्होंने अपने को रोका। इस सम्बन्ध में यह घोषित किया जाता है कि केवल शुद्ध भक्त ही अपने आप को माया के आकर्षक स्वरूप से दूर रख सकता है। अन्यथा एक बार जीव माया के बाह्य स्वरूप के द्वारा बन्दी हुआ नहीं कि वह उससे कभी छूट नहीं पाता। जब भगवान् ने शिवजी पर कृपा की तो उन्होंने अपनी पत्नी भवानी तथा अपने साथी प्रेतों सहित भगवान् की प्रदक्षिणा की और फिर अपने धाम को चले गये। शुकदेव गोस्वामी इस अध्याय की समाप्ति उत्तमश्लोक भगवान् के दिव्य गुणों के वर्णन एवं इस घोषणा के साथ करते हैं कि मनुष्य नवधा भक्ति द्वारा भगवान् की महिमा का गायन कर सकता है, जिसका शुभारम्भ *श्रवणं कीर्तनम्* से होता है।

श्रीबादरायणिरुवाच

वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ।
मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥
वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः ।
सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; वृष-ध्वजः—बैल पर सवारी करने वाले शिवजी ने; निशम्य—सुनकर; इदम्—यह (खबर); योषित्-रूपेण—स्त्री का रूप धारण करके; दानवान्—दानवों को; मोहयित्वा—मुग्ध करके; सुर-गणान्—देवताओं को; हरिः—भगवान् ने; सोमम्—अमृत; अपाययत्—पिलाया; वृषम्—बैल पर; आरुह्य—चढ़कर; गिरिशः—शिवजी; सर्व—सारे; भूत-गणैः—भूत-प्रेतों के द्वारा; वृतः—घिरे हुए; सह देव्या—उमा के साथ; ययौ—गये; द्रष्टुम्—देखने के लिए; यत्र—जहाँ; आस्ते—रुकते हैं; मधुसूदनः—भगवान् विष्णु।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : स्त्री के रूप में भगवान् हरि ने दानवों को मोह लिया और देवताओं को अमृत पिलाया। इन लीलाओं को सुनकर बैल पर सवारी करने वाले शिवजी उस स्थान पर गये जहाँ भगवान् मधुसूदन रहते हैं। शिवजी अपनी पत्नी उमा को साथ लेकर तथा

अपने साथी प्रेतों से घिरकर वहाँ भगवान् के स्त्री-रूप को देखने गये।

सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ।
सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सभाजितः—सुसम्मानित; भगवता—भगवान् विष्णु द्वारा; स-आदरम्—अत्यन्त सम्मानपूर्वक (जो शिवजी के अनुकूल था); स-उमया—उमा सहित; भवः—शम्भु (शिवजी); सु-उपविष्टः—ठीक प्रकार से स्थित; उवाच—कहा; इदम्—यह; प्रतिपूज्य—सम्मान प्रदर्शित करके; स्मयन्—मुस्काते; हरिम्—भगवान् के प्रति।

भगवान् ने शिवजी तथा उमा का अत्यन्त सम्मान के साथ स्वागत किया और ठीक प्रकार से बैठ जाने पर शिवजी ने भगवान् की विधिवत् पूजा की तथा मुस्काते हुए वे इस प्रकार बोले।

श्रीमहादेव उवाच
देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ।
सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

श्री-महादेवः उवाच—शिवजी (महादेव) ने कहा; देव-देव—हे देवताओं में सर्वश्रेष्ठ देवता; जगत्-व्यापिन्—हे सर्वव्यापी भगवान्; जगत्-ईश—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; जगत्-मय—हे भगवान्, जो तुरन्त ही अपनी शक्ति से इस सृष्टि में बदल गए हैं; सर्वेषाम् अपि—समस्त प्रकार के; भावानाम्—स्थितियाँ; त्वम्—तुम; आत्मा—गतिमान् शक्ति; हेतुः—इसका कारण; ईश्वरः—भगवान्, परमेश्वर।

महादेवजी ने कहा : हे देवताओं में प्रमुख देव! हे सर्वव्यापी, ब्रह्माण्ड के स्वामी! आपने अपनी शक्ति से अपने को सृष्टि में रूपान्तरित कर दिया है। आप हर वस्तु के मूल एवं सक्षम कारण हैं। आप भौतिक नहीं हैं। निस्सन्देह, आप हर एक की परम सञ्जीवनी शक्ति या परमात्मा हैं। अतएव आप परमेश्वर हैं अर्थात् सभी नियंत्रकों के परम नियंत्रक हैं।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु इस भौतिक जगत के भीतर *सत्त्वगुण-अवतार* के रूप में निवास करते हैं। शिवजी *तमोगुण-अवतार* हैं और ब्रह्माजी *रजोगुण-अवतार* हैं। किन्तु यद्यपि विष्णुजी इन्हीं में से एक हैं, वे उसी कोटि के नहीं है। भगवान् विष्णु *देवदेव* हैं अर्थात् वे समस्त देवताओं के प्रमुख हैं। चूँकि शिवजी इसी भौतिक जगत में हैं अतएव भगवान् विष्णु की शक्ति में शिवजी सम्मिलित हैं। इसीलिए विष्णु *जगद्व्यापी* या सर्वव्यापी कहलाते हैं। शिवजी कभी-कभी महेश्वर कहलाते हैं; अतएव लोग सोचते हैं कि शिवजी ही सब कुछ हैं। किन्तु यहाँ पर शिवजी विष्णु को जगदीश कहकर सम्बोधित करते हैं जिसका अर्थ है ''ब्रह्माण्ड के स्वामी।'' कभी-कभी शिवजी विश्वेश्वर कहलाते हैं, किन्तु यहाँ

पर वे विष्णु को *जगन्मय* कहकर सम्बोधित करते हैं जिससे सूचित होता है कि विश्वेश्वर भी भगवान् विष्णु के अधीन हैं। भगवान् विष्णु वैकुण्ठ लोक के स्वामी हैं, फिर भी वे भौतिक जगत को भी नियंत्रित करते हैं जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है (*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*)। ब्रह्माजी तथा शिवजी भी कभी-कभी ईश्वर कहलाते हैं, किन्तु परम ईश्वर तो भगवान् विष्णु या कृष्ण हैं। जैसाकि *ब्रह्मसंहिता* में कहा गया है—*ईश्वरः परमः कृष्णः*—भगवान् तो कृष्ण या विष्णु हैं। जितनी भी वस्तुओं का अस्तित्व है वे भगवान् विष्णु के ही कारण उचित क्रम में कार्यशील हैं। *अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्।* यहाँ तक कि परमाणु भी अपने भीतर भगवान् विष्णु की उपस्थिति के कारण कार्यशील हैं।

आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ।
यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

आदि—प्रारम्भ; अन्तौ—तथा अन्त; अस्य—इस व्यक्त जगत का या किसी भी भौतिक या दृश्य वस्तु का; यत्—जो; मध्यम्—आरम्भ एवं अन्त के मध्य, पालन; इदम्—यह दृश्य जगत; अन्यत्—आपके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु; अहम्—गलत धारणा; बहिः—आपसे बाहर; यतः—के कारण; अव्ययस्य—अक्षय; न—नहीं; एतानि—इतने सारे अन्तर; तत्—वह; सत्यम्—परम सत्य; ब्रह्म—ब्रह्म; चित्—आध्यात्मिक; भवान्—आप।

हे भगवान्! व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्या अहंकार तथा इस दृश्य जगत का आदि (उत्पत्ति), पालन तथा संहार सभी कुछ आपसे है। किन्तु आप परम सत्य, परमात्मा, परम ब्रह्म हैं अतएव जन्म, मृत्यु तथा पालन जैसे परिवर्तन आप में नहीं पाये जाते।

तात्पर्य : *यतो वा इमानि भूतानि जयन्ते*—वैदिक मंत्रों के अनुसार प्रत्येक वस्तु भगवान् से उद्भूत है। *भगवद्गीता* (७.४) में स्वयं भगवान् कहते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये आठ मिलकर मेरी भिन्न। भौतिक शक्तियाँ बनाते हैं।" दूसरे शब्दों में, दृश्य जगत के अवयव भी भगवान् की शक्ति से बने हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि चूँकि सारे अवयव उनसे प्राप्त होते हैं अतएव भगवान् अब पूर्ण नहीं रहे हैं। *पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते*—चूँकि वे पूर्ण इकाई हैं, अतएव भले ही उनसे

अनेक पूर्ण इकाइयाँ क्यों न उद्‌भूत हों, वे पूर्ण बने रहते हैं। इस तरह भगवान् अवयव अर्थात् अक्षम कहलाते हैं। जब तक हम परम सत्य को *अचिन्त्यभेदाभेद* नहीं मान लेते तब तक हमें परम सत्य की स्पष्ट धारणा नहीं हो सकती। भगवान् हर वस्तु के मूल हैं। *अहमादिर्हि देवानाम्*—वे समस्त देवताओं के मूल कारण हैं। *अहं सर्वस्य प्रभव:*—उन्हीं से हर वस्तु उद्‌भूत होती है।

सभी दशाओं में, हम इस समग्र दृश्य जगत में चाहे जो भी धारणा करें वह वास्तव में भगवान् है। उनके लिए ''यह मेरा है तथा यह किसी अन्य का है'' में कोई अन्तर नहीं होता क्योंकि वे सब कुछ हैं। इसीलिए वे अव्यव कहलाते हैं जिसका अर्थ है परिवर्तनरहित तथा न समाप्त होने वाला। चूँकि भगवान् अव्यय हैं अतएव वे परम सत्य हैं।

तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिष: ।
विसृज्योभयत: सङ्गं मुनय: समुपासते ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारे; एव—निस्सन्देह; चरण-अम्भोजम्—चरणकमल; श्रेय:-कामा:—चरम कल्याण रूपी जीवन के चरम लक्ष्य के इच्छुक व्यक्ति; निराशिष:—बिना किसी भौतिक इच्छा के; विसृज्य—त्यागकर; उभयत:—इस जीवन में तथा अगले जीवन में; सङ्गम्—आसक्ति; मुनय:—मुनिगण; समुपासते—पूजा करते हैं।

जो शुद्ध भक्त या महान् सन्त पुरुष (मुनिगण) जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त करने के इच्छुक हैं तथा इन्द्रियतृप्ति की समस्त भौतिक इच्छाओं से रहित हैं, वे आपके चरणकमलों की निरन्तर भक्ति में लगे रहते हैं।

तात्पर्य : जब मनुष्य सोचता है कि, ''मैं यह शरीर हूँ और इससे सम्बन्धित हर वस्तु मेरी है'' तो वह भौतिक जगत में होता है। *अतो गृहक्षेत्रसुताप्त वित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति।* यह भौतिक जीवन का लक्षण है। भौतिकतावादी जीवन की धारणा होने पर मनुष्य सोचता है कि, ''यह मेरा घर है, यह मेरी जमीन है, यह मेरा परिवार है, यह मेरा प्रान्त है।'' किन्तु जो लोग *मुनय:* हैं अर्थात् जो नारद मुनि के पदचिह्नों का अनुगमन करने वाले सन्त पुरुष हैं, वे बिना किसी इन्द्रियतृप्ति की इच्छा के भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगे रहते हैं। *अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्।* चाहे यह जीवन हो, या अगला जीवन, ऐसे सन्त भक्तों की एकमात्र चिन्ता भगवान् की सेवा करने के लिए रहती है। अत: वे इतने भी परम होते हैं क्योंकि उन्हें अन्य कोई इच्छा नहीं सताती। भौतिक इच्छा के द्वन्द्वों से मुक्त होने के वे कारण *श्रेयस् कामा:* कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, उन्हें धर्म, अर्थ या काम से कोई प्रयोजन नहीं

रहता। ऐसे लोगों की एकमात्र चिन्ता *मोक्ष* भी है। यह *मोक्ष* ब्रह्म से तदाकार होना नहीं है जैसाकि मायावादी चिन्तक मानते हैं। चैतन्य महाप्रभु ने बतलाया कि वास्तविक मोक्ष का अर्थ है भगवान् के चरणकमलों की शरण में जाना। उन्होंने सार्वभौम भट्टाचार्य को उपदेश देते हुए इस तथ्य को स्पष्ट तौर पर बतलाया था। सार्वभौम भट्टाचार्य *श्रीमद्भागवत* के *मुक्ति-पदे* शब्द को शुद्ध करना चाहते थे, किन्तु चैतन्य महाप्रभु ने उन्हें बताया कि *श्रीमद्भागवत* के किसी भी शब्द को सुधारने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने समझाया कि *मुक्तिपदे* भगवान् विष्णु के चरणकमलों का सूचक है, जो मुक्ति के दाता हैं और इसलिए मुकुन्द कहलाते हैं। शुद्ध भक्त को भौतिक वस्तुओं से कोई सरोकार नहीं रहता। वह धर्म, अर्थ या काम के लिए भी चिन्तित नहीं रहता। वह एकमात्र भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने में रुचि रखता है।

त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोक-
मानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ।
विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमाना-
मात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयानपेक्षः ॥ ७॥

शब्दार्थ

त्वम्—आप; ब्रह्म—सर्वव्यापी परम सत्य; पूर्णम्—परम पूर्ण; अमृतम्—कभी नष्ट न होने वाले; विगुणम्—प्रकृति के गुणों से मुक्त, आध्यात्मिक रूप से स्थित; विशोकम्—शोक रहित; आनन्द-मात्रम्—सदैव दिव्य आनन्द से युक्त; अविकारम्—परिवर्तनरहित; अनन्यत्—हर वस्तु से पृथक्; अन्यत्—फिर भी सब कुछ हो; विश्वस्य—दृश्य जगत के; हेतुः—कारण; उदय—प्रारम्भ के; स्थिति—पालन; संयमानाम्—तथा विश्व के विभिन्न विभागों को नियंत्रण में रखने वाले समस्त निदेशकों में से; आत्म-ईश्वरः—हर एक को निर्देश देने वाले परमात्मा; च—भी; तत्-अपेक्षतया—हर व्यक्ति आप पर आश्रित है; अनपेक्षः—सदैव पूर्णतः स्वतंत्र।

हे प्रभु! आप परब्रह्म तथा सभी प्रकार से पूर्ण हैं। पूर्णतः आध्यात्मिक होने के कारण आप नित्य, प्रकृति के भौतिक गुणों से मुक्त तथा दिव्य आनन्द से पूरित हैं। निस्सन्देह, आपके लिए शोक करने का प्रश्न ही नहीं उठता। चूँकि आप समस्त कारणों के परम कारण हैं अतएव आपके बिना कोई भी अस्तित्व में नहीं रह सकता। फिर भी जहाँ तक कारण तथा कार्य का सम्बन्ध है हम आपसे भिन्न हैं क्योंकि एक दृष्टि से कार्य तथा कारण पृथक्-पृथक् हैं। आप सृष्टि, पालन तथा संहार के मूल कारण हैं और आप समस्त जीवों को वर देते हैं। हर व्यक्ति अपने कार्यों के फलों के लिए आप पर निर्भर है, किन्तु आप सदा स्वतंत्र हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.४) में भगवान् कहते हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥

''यह सारा ब्रह्माण्ड मेरे अव्यक्त रूप से व्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।'' इससे *अचिन्त्य-भेदाभेद* अर्थात् एकसाथ एकत्व तथा भिन्नता दर्शन की व्याख्या हो जाती है। प्रत्येक वस्तु परम ब्रह्म है; फिर भी परम पुरुष हर वस्तु से पृथक् स्थित है। निस्सन्देह, हर भौतिक वस्तु से पृथक् स्थित होने के कारण वे परम ब्रह्म, परम कारण तथा परम नियन्ता हैं। *ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द-विग्रहः।* भगवान् परम कारण हैं और उनके स्वरूप को प्रकृति के भौतिक गुणों से कोई सरोकार नहीं रहता। भक्त प्रार्थना करता है ''जिस तरह आपका भक्त समस्त इच्छाओं से पूर्णतः रहित है उसी प्रकार आप भी इच्छाओं से पूर्णतया मुक्त हैं। आप पूर्णतः स्वतंत्र हैं। यद्यपि सारे जीव आपकी सेवा में लगे रहते हैं, किन्तु आप किसी की सेवा पर आश्रित नहीं हैं। यद्यपि यह संसार पूरी तरह से आपके द्वारा सृजित है, किन्तु सब कुछ आपकी स्वीकृति पर निर्भर करता है। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति आप ही से उत्पन्न हैं। स्वतंत्र रूप से कुछ भी नहीं किया जा सकता, किन्तु आप अपने सेवकों द्वारा की गई सेवा पर आश्रित न रहते हुए स्वतंत्र होकर कर्म करते हैं। सारे जीव अपनी मुक्ति के लिए आपकी कृपा पर आश्रित रहते हैं, किन्तु जब आप उन्हें मुक्ति देना चाहते हैं, तो आप किसी अन्य पर आश्रित नहीं रहते। निस्सन्देह, अपनी अहैतुकी कृपा से आप किसी को भी मुक्ति दे सकते हैं। जिन्हें आपकी कृपा प्राप्त होती है वे *कृपासिद्ध* कहलाते हैं। सिद्धि-पद को प्राप्त करने में अनेकानेक जन्म लग जाते हैं। (*बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते*)। फिर भी कठोर तपस्या किये बिना ही आपकी कृपा से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। भक्ति को अहैतुकी होना चाहिए और अवरोधों से मुक्त (*अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति*)। यही *निराशिषः* पद है अर्थात् सभी प्रकार के फलों की आशा से मुक्ति। शुद्ध भक्त निरन्तर आपकी दिव्य प्रेमाभक्ति करता है, किन्तु आप उसकी सेवा पर आश्रित न रहकर किसी पर भी कृपा कर सकते हैं।''

एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयं च
स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ।
अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो

यस्माद्गुणव्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

एकः—केवल एक; त्वम्—आप; एव—निस्सन्देह; सत्—जिसका अस्तित्व है, यथा फल; असत्—जिसका अस्तित्व नहीं है, यथा कारण; द्वयम्—दो; अद्वयम्—द्वैतरहित; च—तथा; स्वर्णम्—सोना; कृत—विभिन्न रूपों में निर्मित; आकृतम्—स्वर्ण का मूल स्त्रोत (सोने की खान); इव—सदृश; इह—इस संसार में; न—नहीं; वस्तु-भेदः—वस्तु में भेद; अज्ञानतः—अज्ञान के कारण; त्वयि—तुममें; जनैः—जनसमूह द्वारा; विहितः—ऐसा होना चाहिए; विकल्पः—विभेद; यस्मात्—जिसके कारण; गुण-व्यतिकरः—प्रकृति के भौतिक गुणों द्वारा उत्पन्न अन्तरों से रहित; निरुपाधिकस्य—किसी भौतिक उपाधि के बिना।

हे प्रभु! आप अकेले ही कार्य तथा कारण हैं, अतएव आप दो प्रतीत होते हुए भी परम एक हैं। जिस तरह आभूषण के सोने तथा खान के सोने में कोई अन्तर नहीं होता, उसी तरह कारण तथा कार्य में अन्तर नहीं होता, दोनों ही एक हैं। अज्ञानवश ही लोग अन्तर तथा द्वैत गढ़ते हैं। आप भौतिक कल्मष से मुक्त हैं और चूँकि समस्त ब्रह्माण्ड आपके द्वारा उत्पन्न है और आपके बिना नहीं रह सकता अतएव यह आपके दिव्य गुणों का प्रभाव है। इस प्रकार इस धारणा को कोई बल नहीं मिलता कि ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि सारे जीव भगवान् की तटस्था शक्ति के स्वरूप हैं और जीवों के विविध शरीर भौतिक शक्ति के परिणाम हैं। इस प्रकार शरीर भौतिक और आत्मा आध्यात्मिक माना जाता है। किन्तु इन दोनों का उद्गम एक ही भगवान् है। जैसाकि भगवान् *भगवद्गीता* (७.४-५) में बताते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

''पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा मिथ्या अहंकार—ये आठों मिलकर मेरी भिन्ना भौतिक शक्तियाँ बनाते हैं। किन्तु हे महाबली अर्जुन! इस कनिष्ठ प्रकृति के अतिरिक्त मेरी एक श्रेष्ठ शक्ति है, जो भौतिक प्रकृति से संघर्ष करने वाले सभी तथा ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले सभी जीवों से बनती हैं।'' इस प्रकार पदार्थ तथा जीव दोनों भगवान् की शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। चूँकि शक्ति तथा शक्तिमान पृथक्-पृथक् नहीं हैं और चूँकि भौतिक तथा तटस्था दोनों शक्तियाँ परम शक्तिमान भगवान् की शक्तियाँ हैं अतएव अन्ततः भगवान् ही सर्वेसर्वा हैं। इस प्रसंग में सोने का

उदाहरण दिया जा सकता है—एक जो साँचें में नहीं ढाला गया और दूसरा जो साँचें में ढाला जाकर विविध आभूषणों में परिणत कर दिया गया है। सोने का कुंडल तथा खान से निकला सोना केवल कार्य-कारण रूप में भिन्न हैं; अन्यथा वे एक हैं। *वेदान्तसूत्र* में वर्णन हुआ है कि ब्रह्म हर एक वस्तु का कारण है। *जन्माद्यस्य यतः।* प्रत्येक वस्तु परब्रह्म से उत्पन्न होती है—प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न शक्तियों के रूप में उससे उद्भूत होती है। इसलिए इनमें से किसी भी शक्ति को मिथ्या नहीं मानना चाहिए। मायावादियों द्वारा ब्रह्म तथा माया में अन्तर मात्र उनके अज्ञान के कारण है।

भागवत-चन्द्र-चन्द्रिका में श्रीमद् वीरराघव आचार्य ने वैष्णव दर्शन का वर्णन इस प्रकार दिया है। दृश्य जगत को *सत्* तथा *असत् और चित्* तथा *अचित्* बतलाया गया है। पदार्थ अचित् है और जीव चित् है लेकिन उनका उद्गम भगवान् है जिनमें पदार्थ तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता। इस दृष्टि से पदार्थ तथा आत्मा से युक्त यह दृश्य जगत भगवान् से भिन्न नहीं है। *इदं हि विश्वं भगवान् इवेतरः*—यह दृश्य जगत भी भगवान् है यद्यपि यह उनसे भिन्न प्रतीत होता है। *भगवद्गीता* (९.४) में भगवान् कहते हैं—

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः।

''यह विश्व मेरे अव्यक्त रूप से व्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं, किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ।'' अतः यद्यपि कोई यह कहे कि भगवान् इस दृश्य जगत से भिन्न हैं, किन्तु वास्तव में वे भिन्न नहीं हैं। भगवान् कहते हैं—*मया ततमिदं सर्वम्*—मैं अपने निराकार रूप में विश्वभर में फैला हुआ हूँ। अतएव यह विश्व उनसे भिन्न नहीं। अन्तर केवल नामों का है। उदाहरणार्थ, चाहे हम सोने के कुंडल की, कंगन की या हार की बात करें, अन्ततोगत्वा वे सभी सोना हैं। उसी प्रकार पदार्थ तथा आत्मा के सभी विविध स्वरूप भगवान् में अन्ततः एक ही हैं। *एकम् एवाद्वितीयं ब्रह्म।* यह वैदिक उक्ति है (*छान्दोग्य उपनिषद्* ६.२.१)। एकत्व का कारण यह है कि सभी वस्तुएँ परब्रह्म से उद्भूत हैं। पहले दिय गये उदाहरण के अनुसार सोने के कुंडल तथा सोने की खान में कोई अन्तर नहीं है। लेकिन वैशेषिक चिन्तक अपनी मायावादी विचारधारा के कारण अन्तर उत्पन्न करते हैं। वे कहते हैं—*ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या*—परम सत्य वास्तविक है और यह दृश्य जगत मिथ्या है। किन्तु जगत को मिथ्या क्यों माना जाये? जगत तो ब्रह्म

का तेज है अतएव जगत भी सत्य है।

अतएव वैष्णवजन जगत को मिथ्या नहीं मानते; वे परमेश्वर सम्बन्धित हर वस्तु को सत्य मानते हैं—

अनासक्तस्य विषयान् यथार्हम् उपयुञ्जतः।

निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।

मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

''भगवान् की सेवा के लिए वस्तुएँ स्वीकार की जानी चाहिए न कि निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए। यदि कोई अनासक्त भाव से तथा कृष्ण से सम्बन्धित होने के कारण कोई वस्तु स्वीकार करता है, तो उसका त्याग *युक्तं वैराग्यम्* कहलाता है। भगवान् की सेवा करने में जो भी अनुकूल हो उसे स्वीकार करना चाहिए; उसे भौतिक वस्तु समझकर ठुकराना नहीं चाहिए'' (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.२५५-२५६)। जगत को मिथ्या समझकर त्यागना नहीं चाहिए। यह जगत सत्य है और सत्य की अनुभूति तब होती है जब प्रत्येक वस्तु को भगवान् की सेवा में लगा दिया जाता है। यदि हम अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए किसी फूल को स्वीकार करते हैं, तो वह भौतिक होता है, किन्तु जब भक्त उसी फूल को भगवान् पर चढ़ाता है, तो वह आध्यात्मिक होता है। अपने लिए लिया गया और पकाया गया भोजन भौतिक है, किन्तु भगवान् के लिए पकाया गया भोजन आध्यात्मिक प्रसाद है। यह अनुभूति का प्रश्न है। वास्तव में, हर वस्तु के देने वाले भगवान् हैं; अतएव हर वस्तु आध्यात्मिक है, किन्तु जो लोग वास्तविक ज्ञान में बढ़े-चढ़े नहीं हैं, वे प्रकृति के तीन गुणों की पारस्परिक क्रिया के कारण वस्तु-वस्तु में भेद मानते हैं। इस प्रसंग में श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि यद्यपि सूर्य ही एकमात्र प्रकाश है किन्तु सात रंगों में दिखने वाला प्रकाश और अंधकार जो सूर्य का अभाव है, वे दोनों सूर्य से भिन्न नहीं हैं क्योंकि सूर्य के अस्तित्व के बिना ऐसा अन्तर रह नहीं सकता। भले ही विभिन्न दशाओं के कारण उनके विविध नाम हों, किन्तु वे सब सूर्य हैं अतएव *पुराणों* का कथन है—

एकदेश स्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा।

परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तथेदमखिलं जगत्॥

''जिस प्रकार अग्नि का प्रकाश अग्नि के एक स्थान पर रहते हुए चारों ओर फैलता है उसी प्रकार परब्रह्म की शक्तियाँ इस सारे ब्रह्माण्ड में फैली हुई हैं'' (*विष्णु पुराण* १.२२.५३)। भौतिक दृष्टि से हम सूर्यप्रकाश को विभिन्न नामों तथा कार्यों के अनुसार फैलते अनुभव कर सकते हैं, किन्तु अन्ततः सूर्य एक है। इसी प्रकार *सर्वं खल्विदं ब्रह्म*—प्रत्येक वस्तु परब्रह्म का विस्तार (अंश) है। अतएव परब्रह्म सर्वस्व हैं और वे भेदरहित हैं। भगवान् से पृथक् किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है।

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेके
एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् ।
अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां
केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

त्वाम्—तुमको; ब्रह्म—परम सत्य, ब्रह्म; केचित्—कुछ लोग, यथा मायावादी जो वेदान्ती कहलाते हैं; अवयन्ति—मानते हैं; उत—निश्चय ही; धर्मम्—धर्म को; एके—कुछ लोग; एके—कुछ अन्य लोग; परम्—दिव्य; सत्-असतोः—कार्य तथा कारण दोनों; पुरुषम्—परम पुरुष को; परेशम्—परम नियन्ता; अन्ये—दूसरे लोग; अवयन्ति—वर्णन करते हैं; नव-शक्ति-युतम्—नौ शक्तियों से युक्त; परम्—दिव्य; त्वाम्—तुमको; केचित्—कुछ; महा-पुरुषम्—भगवान् को; अव्ययम्—शक्तिक्षय के बिना; आत्म-तन्त्रम्—परम स्वतंत्र।

जो निर्विशेष मायावादी कहलाते हैं, वे आपको निर्विशेष ब्रह्म के रूप में मानते हैं। मीमांसक विचारक आपको धर्म के रूप में मानते हैं। सांख्य दार्शनिक आपको ऐसा परम पुरुष मानते हैं, जो प्रकृति तथा पुरुष के परे है और देवताओं का भी नियंत्रक है। जो लोग पञ्चरात्र नामक भक्ति के नियमों के अनुयायी हैं, वे आपको नौ शक्तियों से युक्त मानते हैं। तथा पतञ्जलि मुनि के अनुयायी, जो पतञ्जल दार्शनिक कहलाते हैं, आपको उस परम स्वतंत्र भगवान् के रूप में मानते हैं जिसके न तो कोई तुल्य है और जिस से कोई श्रेष्ठ है।

नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या
जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ।
यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्य-
मर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

न—न तो; अहम्—मैं; पर-आयुः—ऐसा व्यक्ति जो लाखों करोड़ों वर्ष जीवित रहता है (ब्रह्माजी); ऋषयः—सात लोकों के सात ऋषि; न—न तो; मरीचि-मुख्याः—मरीचि ऋषि इत्यादि; जानन्ति—जानते हैं; यत्—जिससे (भगवान् से); विरचितम्—यह ब्रह्माण्ड रचा गया; खलु—निस्सन्देह; सत्त्व-सर्गाः—यद्यपि भौतिक सतोगुण में उत्पन्न; यत्-मायया—जिसकी माया के

प्रभाव से; मुषित-चेतसः—मोहित चित्त; ईश—हे स्वामी; दैत्य—असुर; मर्त्य-आदयः—मनुष्य इत्यादि; किम् उत—क्या कहा जाये; शश्वत्—सदैव; अभद्र-वृत्ताः—प्रकृति के निम्न गुणों से प्रभावित।

हे प्रभु! सभी देवताओं में श्रेष्ठ माना जाने वाला मैं, ब्रह्माजी तथा मरीचि इत्यादि महर्षि सतोगुण से उत्पन्न हैं। तब भी हम सभी आपकी माया से मोहग्रस्त हैं और यह नहीं समझ पाते कि यह सृष्टि क्या है। आप हमारी बात छोड़ भी दें तो उन असुरों तथा मनुष्यों के बारे में क्या कहा जाये जो प्रकृति के निम्न गुणों (रजो तथा तमो गुणों) से युक्त हैं? वे आपको कैसे जान सकते हैं?

तात्पर्य : वस्तुतः सतोगुणी लोग भी भगवान् की स्थिति को नहीं समझ सकते। तो फिर उनके विषय में क्या कहा जाये जो प्रकृति के निम्न गुणों—रजो तथा तमो गुणों में स्थित हैं? हम भगवान् के विषय में कल्पना भी कैसे कर सकते हैं? अनेक ऐसे विचारक हैं, जो परम सत्य को समझने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु वे निम्न गुणों से युक्त होने के कारण और मद्यपान, मांसाहार, अवैध मैथुन तथा द्यूतक्रीड़ा जैसी बुरी आदतों में अनुरक्त होने के कारण भगवान् के विषय में किस तरह सोच सकते हैं? उनके लिए यह असम्भव है। वर्तमान युग के लिए नारद मुनि द्वारा बताई गई *पाञ्चरात्रिकी विधि ही* एकमात्र आशा है। अतएव श्रील रूप गोस्वामी ने *ब्रह्मयामल* से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है—

श्रुतिस्मृतिपुराणादिपञ्चरात्रविधिं विना।

ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥

''भगवान् की वह भक्ति जो *उपनिषदों, पुराणों* तथा *नारद पञ्चरात्र* जैसे वैदिक वाङ्मय की अवमानना करे वह समाज में अनावश्यक उत्पात मात्र है।'' (*भक्तिरसामृत सिन्धु* १.२.१०१)। जो लोग ज्ञानी हैं और सतोगुणी हैं, वे *श्रुति, स्मृति* तथा *पाञ्चरात्रिकी-विधि* जैसे अन्य धर्मशास्त्रों के वैदिक उपदेशों का पालन करते हैं। भगवान् को इस तरह से समझे बिना मनुष्य केवल उत्पात मचाता है। इस कलियुग में अनेक गुरु उत्पन्न हो गये हैं और चूँकि वे *श्रुतिस्मृति-पुराणादि-पञ्चरात्रिक-विधि* का उल्लेख नहीं करते अतएव वे परम सत्य को समझने की दिशा में विश्व भर में महान् उत्पात मचा रहे हैं। फिर भी, जो कोई उपयुक्त गुरु के निर्देशन में *पाञ्चरात्रिकी-विधि* का पालन करता है, वह परम सत्य को समझ सकता है। कहा गया है— *पञ्चरात्रस्य कृत्स्नस्य वक्ता तु भगवान् स्वयम्*—पञ्चरात्र पद्धति भगवान् द्वारा उसी प्रकार कही गई है, जिस तरह *भगवद्गीता* कही गई थी। *वासुदेवशरणा*

विदुरज्ञसैव—सत्य को वही समझ सकता है, जिसने वासुदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली हो।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

''जो वास्तव में ज्ञानी है, वह अनेक जन्म-जन्मातरों के बाद मुझको समस्त वस्तुओं तथा कारणों का कारण जानते हुए मेरी शरण में आता है। ऐसे महात्मा अत्यन्त दुर्लभ हैं।'' (*भगवद्गीता* ७.१९)। जिन्होंने वासुदेव के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर रखी है केवल वे ही परम सत्य को समझ सकते हैं।

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।

जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यद् अहैतुकम्॥

''भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करने से मनुष्य तुरन्त ही अहैतुक ज्ञान तथा संसार से वैराग्य प्राप्त कर लेता है। (*भागवत* १.२.७)।'' अतएव वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं *भगवद्गीता* (१८.६६) में शिक्षा देते हैं—

सर्व-धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज

''सारे धर्मों को त्यागकर केवल मेरी शरण में आओ।''

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः

''केवल भक्ति द्वारा ही परम पुरुष को यथारूप में समझा जा सकता है। (*भगवद्गीता* १८.५५)। जब ब्रह्माजी या शिवजी तक भगवान् को ठीक से नहीं समझ पाते तो अन्यों के विषय में क्या कहा जा सकता है? उन्हें तो केवल *भक्तियोग* के द्वारा समझा जा सकता है—

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥

(*भगवद्गीता* ७.१)

यदि कोई वासुदेव कृष्ण को स्वयं के बारे में बोलते हुए मात्र श्रवण करके उनकी शरण में जाकर भक्तियोग का अभ्यास करता है, तो वह उनके विषय में सब कुछ जान सकता है। निस्सन्देह, वह उन्हें

सम्यक् रूप से समझ सकता है।

स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं
भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ।
वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं
सर्वं तदात्मकतयावगमोऽवरुन्त्से ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; त्वम्—आप भगवान्; समीहितम्—(आपके द्वारा) उत्पन्न किया हुआ; अदः—इस भौतिक जगत का; स्थिति-जन्म-नाशम्—सृजन, पालन तथा संहार; भूत—जीवों का; ईहितम् च—तथा विभिन्न कार्य या उद्योग; जगतः—सारे जगत का; भव-बन्ध-मोक्षौ—सांसारिक बन्धन में पड़ने और छूटने में; वायुः—हवा; यथा—जिस तरह; विशति—प्रवेश करती है; खम्—विस्तृत आकाश में; च—तथा; चर-अचर-आख्यम्—तथा चर और अचर; सर्वम्—हर वस्तु; तत्—वह; आत्मकतया—आपकी उपस्थिति से; अवगमः—आपके अवगत रहने से; अवरुन्त्से—सर्वव्यापी होने के कारण आप सब कुछ जानते हैं।

हे प्रभु! आप साक्षात् परम ज्ञान हैं। आप इस सृष्टि तथा इसके सृजन, पालन तथा संहार के विषय में सब कुछ जानते हैं। आप जीवों द्वारा किये जाने वाले उन सारे प्रयासों से अवगत हैं जिनके द्वारा वे इस भौतिक जगत से बँधते या मुक्त होते हैं। जिस प्रकार वायु विस्तीर्ण आकाश के साथ-साथ समस्त चराचर प्राणियों में प्रविष्ट करती है उसी प्रकार आप सर्वत्र विद्यमान हैं, अतएव सर्वज्ञ हैं।

तात्पर्य : *ब्रह्मसंहिता* (५.३५) में कहा गया है—

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं

यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः ।

अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

''मैं उन भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो अपने एक स्वांश के द्वारा प्रत्येक ब्रह्माण्ड तथा प्रत्येक परमाणु में प्रवेश करते हैं और इस प्रकार सारी सृष्टि में अपनी असीम शक्ति को प्रकट करते हैं।''

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभि

स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।

गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

''मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो अपने निजी धाम गोलोक में उन राधा के साथ निवास करते हैं, जो उनके आध्यात्मिक स्वरूप के अनुरूप हैं और ह्लादिनी शक्ति से समन्वित हैं। उनकी सखियां उनकी विश्वस्त संगनियाँ हैं, जो उनके शारीरिक स्वरूप के अंश रूप हैं और नित्य आनन्दमय आध्यात्मिक रस से ओतप्रोत हैं।'' (*ब्रह्मसंहिता* ५.३७)।

यद्यपि गोविन्द सदा अपने धाम में निवास करते हैं (*गोलोक एव निवसति*) किन्तु वे एकसाथ सर्वत्र विद्यमान हैं। उनसे कुछ भी छिपा नहीं है और न ही छिपाया जा सकता है। यहाँ पर दिए उदहरण में भगवान् की तुलना वायु से की गई है, जो विस्तीर्ण आकाश में तथा प्रत्येक शरीर के भीतर रहती है, किन्तु फिर भी उन सबसे भिन्न रहती है।

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।
सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥ १२॥

शब्दार्थ

अवताराः—अवतार; मया—मेरे द्वारा; दृष्टाः—देखे जा चुके हैं; रममाणस्य—लीला करते समय; ते—तुम्हारे; गुणैः—दिव्य गुणों से प्रकट; सः—शिवजी; अहम्—मैं; तत्—वह अवतार; द्रष्टुम् इच्छामि—देखना चाहता हूँ; यत्—जो; ते—तुम्हारा; योषित्-वपुः—स्त्री का शरीर; धृतम्—धारण किया हुआ।

हे प्रभु! मैंने आपके उन सभी अवतारों का दर्शन किया है जिन्हें आप अपने दिव्य गुणों के द्वारा प्रकट कर चुके हैं। अब जबकि आप एक सुन्दर तरुणी के रूप में प्रकट हुए हैं, मैं आपके उसी स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ।

तात्पर्य : जब शिवजी भगवान् विष्णु के पास गये तो उन्होंने वहाँ उनसे आने का कारण पूछा। अब शिवजी अपनी मनोकामना प्रकट कर रहे हैं। वे भगवान् विष्णु के अधुनातम मोहिनी-मूर्ति अवतार को देखना चाह रहे थे जिसे उन्होंने क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न अमृत को वितरित करने के लिए धारण किया था।

येन सम्मोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ।
तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥ १३॥

शब्दार्थ

येन—ऐसे अवतार से; सम्मोहिताः—मोहित हो गये थे; दैत्याः—असुरगण; पायिताः—पिलाया गया था; च—भी; अमृतम्—अमृत; सुराः—देवतागण; तत्—वह रूप; दिदृक्षवः—देखने की इच्छा से; आयाताः—हम आये हैं; परम्—अत्यधिक; कौतूहलम्—अत्यन्त उत्सुकता; हि—निस्सन्देह; नः—हमारी।

हे भगवान्! हम लोग यहाँ पर आपके उस रूप का दर्शन करने आये हैं जिसे आपने असुरों को पूर्णतया मोहित करने के लिए दिखलाया था और इस प्रकार देवताओं को अमृत पान करने दिया था। मैं उस रूप को देखने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।

श्रीशुक उवाच
एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवान्शूलपाणिना ।
प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; अभ्यर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; विष्णुः भगवान्—भगवान् विष्णु ने; शूल-पाणिना—त्रिशूलधारी शिवजी द्वारा; प्रहस्य—हँसते हुए; भाव-गम्भीरम्—अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक; गिरिशम्—शिवजी को; प्रत्यभाषत—उत्तर दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब त्रिशूलधारी शिवजी ने भगवान् विष्णु से इस तरह प्रार्थना की तो वे गम्भीर होकर हँस पड़े और उन्होंने उनको इस प्रकार से उत्तर दिया।

तात्पर्य : भगवान् विष्णु *योगेश्वर* कहलाते हैं। *यत्र योगेश्वरः कृष्णः।* योगीजन योगाभ्यास द्वारा कुछ शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण तो योग शक्ति के ईश्वर कहलाते हैं। शिवजी उस मोहिनी-मूर्ति को देखना चाहते थे जिससे सारा जगत मोहित था और भगवान् विष्णु इस विचार में मग्न थे कि शिवजी को भी किस तरह मोहा जाये। इसलिए *भावगम्भीरम्* शब्द का प्रयोग हुआ है। माया को दुर्गादेवी द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, जो गिरिश या शिवजी की पत्नी हैं। शिव दुर्गाजी द्वारा मोहित नहीं हो पाये थे, किन्तु अब जब वे भगवान् विष्णु के स्त्री-रूप को देखना चाह रहे थे तो भगवान् विष्णु अपनी योग-शक्ति से ऐसा रूप धारण करेंगे जो उनको भी मोह सके। इसीलिए भगवान् विष्णु गम्भीर थे और साथ ही हँसते जा रहे थे।

श्रीभगवानुवाच
कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया धृतः ।
पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥ १५॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; कौतूहलाय—मोहग्रस्त करने के लिए; दैत्यानाम्—असुरों को; योषित्-वेषः—सुन्दर स्त्री का रूप; मया—मेरे द्वारा; धृतः—धारण किया गया; पश्यता—देखते हुए कि यह मेरे लिए आवश्यक है; सुर-कार्याणि—देवताओं के हितों की रक्षा करने के लिए; गते—छीन लिए जाने पर; पीयूष-भाजने—अमृत घट के।

भगवान् ने कहा : जब असुरों ने अमृत घट छीन लिया तो मैंने उन्हें प्रत्यक्ष छलावा देकर मोहित करने के उद्देश्य से और इस तरह देवताओं के हित में कार्य करने के लिए, एक सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर लिया।

तात्पर्य : जब भगवान् ने मोहिनी-मूर्ति का रूप धारण किया, तो असुर तो सम्मोहित हुए लेकिन वहाँ पर उपस्थित देवतागण प्रसन्न नहीं हुए। दूसरे शब्दों में, जो लोग आसुरी प्रवृत्ति के होते हैं, वे स्त्री के सौन्दर्य से सम्मोहित हो जाते हैं, किन्तु जो कृष्णभावनामृत में आगे बढ़े हुए हैं या जो सतोगुणी पद पर हैं, वे मोहित नहीं होते। भगवान् जानते थे कि क्योंकि शिवजी कोई सामान्य व्यक्ति नहीं हैं, वे सुन्दर से सुन्दर स्त्री द्वारा भी मोहित नहीं किये जा सकते। साक्षात् कामदेव ने पार्वती की उपस्थिति में शिवजी की कामेच्छाएँ जगाने का प्रयत्न किया था, किन्तु शिवजी तनिक भी विचलित नहीं हुए। उल्टे, शिवजी के नेत्रों की ज्वाला से कामदेव भस्म हो गया। अतएव भगवान् विष्णु को ठीक से सोच-विचार करके ऐसा सुन्दर रूप धारण करना था जिससे शिवजी भी सम्मोहित हो जाँय। फलस्वरूप वे गम्भीर रूप से हँस रहे थे, जैसाकि पिछले श्लोक में कहा गया है (*प्रहस्य भावगम्भीरम्*)। सामान्यतया कोई सुन्दर स्त्री शिवजी में कामवासना नहीं जगा सकती, किन्तु भगवान् विष्णु सोच रहे थे कि क्या स्त्री का कोई ऐसा रूप हो सकता है, जो उन्हें सम्मोहित कर सके ?

तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम ।
कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रभवोदयम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; ते—तुमको; अहम्—मैं; दर्शयिष्यामि—दिखलाऊँगा; दिदृक्षोः—देखने के इच्छुक; सुर-सत्तम—हे देवताओं में श्रेष्ठ; कामिनाम्—कामी पुरुषों के; बहु—अनेक; मन्तव्यम्—आराधना का लक्ष्य; सङ्कल्प—कामेच्छाएँ; प्रभव-उदयम्—प्रबल रूप से जगाते हुए।

हे देवश्रेष्ठ! अब मैं तुम्हें अपना वह रूप दिखाऊँगा जो कामी पुरुषों द्वारा अत्यधिक सराहा जाता है। चूँकि तुम मेरा वैसा रूप देखना चाहते हो अतएव मैं तुम्हारे समक्ष उसे प्रकट करूँगा।

तात्पर्य : शिवजी द्वारा भगवान् विष्णु से स्त्री का सबसे अधिक आकर्षक रूप प्रकट करने कहना निश्चय ही उपहास का विषय था। शिवजी जानते थे कि वे किसी तथाकथित सुन्दर स्त्री द्वारा विचलित

नहीं किये जा सकते थे। उन्होंने सोचा ''भले ही दैत्यगण सम्मोहित हुए हों किन्तु देवता तो सम्मोहित नहीं हुए; तो मेरा क्या कहना जब देवताओं में मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ।'' फिर भी शिवजी ने भगवान् को स्त्री रूप में देखना चाहा, अतएव भगवान् विष्णु ने स्त्री की भूमिका अदा करने का निश्चय किया और उन्हें ऐसा रूप दिखाना चाहा, जो उन्हें तुरन्त ही कामवासना के समुद्र में डाल दे। अतएव भगवान् विष्णु ने शिवजी से कहा ''मैं तुम्हें अपना स्त्री-रूप दिखलाऊँगा, किन्तु यदि तुम कामवासना से विचलित हो गए तो मुझे दोष मत देना।'' कामी लोग स्त्री के आकर्षक अंगों की प्रशंसा करते हैं, किन्तु जो लोग ऐसी कामवासना से परे हैं और जो कृष्णभावनामृत पद को प्राप्त हैं उन्हें मोहित कर पाना अत्यन्त कठिन है। फिर भी, भगवान् की परम इच्छा से सब कुछ हो सकता है। यही शिवजी की परीक्षा करने का उपाय था कि वे अविचलित रह सकते हैं या नहीं।

श्रीशुक उवाच
इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥ १७॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; ब्रुवाणः—बोलते हुए; भगवान्—भगवान् विष्णु; तत्र—वहाँ; एव—तुरन्त; अन्तरधीयत—शिवजी तथा उनके पार्षदों की दृष्टि से ओझल हो गये; सर्वतः—सर्वत्र; चारयन्—घुमाते हुए; चक्षुः—आँखें; भवः—शिव; आस्ते—रह गए; सह-उमया—अपनी पत्नी उमा के साथ।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : ऐसा कहकर भगवान् विष्णु तुरन्त ही अन्तर्धान हो गये और शिवजी उमा सहित वहीं पर चारों ओर आँखें घुमाते उन्हें ढूँढ़ते रह गये।

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं
विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ।
विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लसद्-
दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ददर्श—शिवजी ने देखा; उपवने—सुन्दर वन में; वर-स्त्रियम्—एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री को; विचित्र—नाना प्रकार के; पुष्प—फूल; अरुण—गुलाबी; पल्लव—पत्तियाँ; द्रुमे—वृक्षों के बीच में; विक्रीडतीम्—खेलने में व्यस्त; कन्दुक—गेंद से; लीलया—खेल-खेल में; लसत्—चमकता; दुकूल—साड़ी से; पर्यस्त—ढका; नितम्ब—कूल्हों पर; मेखलाम्—करधनी पहने।

तत्पश्चात् शिवजी ने गुलाबी पत्तियों तथा विचित्र फूलों से भरे निकट के एक सुन्दर जंगल में एक सुन्दर स्त्री को गेंद से खेलते देखा। उसके कूल्हे एक चमचमाती साड़ी से ढके थे तथा एक

करधनी से सुशोभित थे।

आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तन-
प्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे ।
प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्-
पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

आवर्तन—नीचे गिरने से; उद्वर्तन—तथा ऊपर उछलने से; कम्पित—हिलते; स्तन—दोनों स्तनों का; प्रकृष्ट—सुन्दर; हार—तथा माला के; उरु-भरैः—गुरु भार के कारण; पदे पदे—प्रत्येक पग पर; प्रभज्यमानाम् इव—मानो टूट जायेगी; मध्यतः—शरीर के मध्य भाग में; चलत्—इस तरह हिलती डुलती; पद-प्रवालम्—मूँगे के समान लाल-लाल पाँव; नयतीम्—चंचल; ततः ततः—जहाँ-तहाँ।

चूँकि गेंद ऊपर तथा नीचे उछल रही थी अतएव जब वह उससे खेलती तो उसके स्तन हिलते थे और जब वह अपने मूँगों जैसे लाल मुलायम पाँवों से इधर-उधर चलती तो उन स्तनों के गुरु भार से तथा फूलों की भारी माला से उसकी कमर प्रत्येक पग पर टूटती हुई प्रतीत हो रही थी।

दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं
प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ।
स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्-
कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

दिक्षु—सारी दिशाओं में; भ्रमत्—उछलते; कन्दुक—गेंद; चापलैः—चपलता; भृशम्—अब और तब; प्रोद्विग्न—चिन्ता से युक्त; तार—आँखें; आयत—चौड़ी खुली; लोल—चंचल; लोचनाम्—आँखों वाली; स्व-कर्ण—अपने दोनों कानों में; विभ्राजित—प्रकाशमान्; कुण्डल—कान की बालियाँ; उल्लसत्—चमकती; कपोल—गाल; नील—साँवले; अलक—बालों से युक्त; मण्डित—सुशोभित था; आननाम्—मुख।

उस स्त्री का मुखमण्डल विस्तृत तथा सुन्दर था और चंचल आँखों से सुशोभित था और वह अपने हाथों द्वारा उछाली गई गेंद के साथ घूम रही थीं। उसके कानों के दो जगमगाते कुण्डल उसके चमकते गालों पर साँवली छाया की तरह सुशोभित हो रहे थे और उसके मुख पर बिखरे बाल उसे देखने में और भी सुन्दर बना रहे थे।

श्लथद्दुकूलं कबरीं च विच्युतां
सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ।
विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं
विमोहयन्तीं जगदात्ममायया ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्लथत्—नीचे गिरती या ढीली ढाली; दुकूलम्—साड़ी; कबरीम् च—तथा सिर के बाल; विच्युताम्—खुलकर बिखरते हुए; सन्नह्यतीम्—बाँधने का प्रयत्न करती; वाम-करेण—बाएँ हाथ से; वल्गुना—अत्यन्त आकर्षक; विनिघ्नतीम्—प्रहार करती; अन्य-करेण—दाएँ हाथ से; कन्दुकम्—गेंद को; विमोहयन्तीम्—इस प्रकार हर एक को सम्मोहित करती; जगत्—सारा संसार; आत्म-मायया—अपनी अन्तरंगा शक्ति से।

जब वह गेंद खेलती तो उसके शरीर को ढकने वाली साड़ी ढीली पड़ जाती और उसके बाल बिखर जाते। वह अपने सुन्दर बाएँ हाथ से अपने बालों को बाँधने का प्रयास करती और साथ ही दाएँ हाथ से गेंद को मारकर खेलती जा रही थी। यह इतना आकर्षक दृश्य था कि भगवान् ने अपनी अन्तरंगा शक्ति से इस तरह हर एक को मोह लिया।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.१४) में कहा गया है—*दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया*—भगवान् की बहिरंगा शक्ति अत्यन्त प्रबल है। निस्सन्देह, उसके कार्यों से प्रत्येक व्यक्ति पूरी तरह मोहित हो जाता है। यद्यपि शम्भु (शिव) को इस बहिरंगा शक्ति से सम्मोहित नहीं होना चाहिए था, किन्तु भगवान् विष्णु उन्हें भी मोहित करना चाह रहे थे, अतएव उन्होंने अपनी अन्तरंगा शक्ति को उसी तरह से कार्य करने दिया जिस तरह से उनकी बहिरंगा शक्ति सामान्य व्यक्तियों को मोहित करने के लिए करती है। भगवान् विष्णु किसी भी व्यक्ति को, यहाँ तक कि शम्भु जैसे प्रबल पुरुष को भी, मोह सकते हैं।

तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषद्-
व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ।
स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा
नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥ २२॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; वीक्ष्य—देखकर; देवः—शम्भु की; इति—इस प्रकार; कन्दुक-लीलया—गेंद खेलते हुए; ईषत्—कुछ कुछ; व्रीडा—लज्जा से; अस्फुट—अस्पष्ट; स्मित—हँसी से युक्त; विसृष्ट—भेजा हुआ; कटाक्ष-मुष्टः—तिरछी चितवन से पराजित; स्त्री-प्रेक्षण—उस सुन्दर स्त्री को देखते हुए; प्रतिसमीक्षण—तथा निरन्तर उसके द्वारा देखा जाकर; विह्वल-आत्मा—जिसका मन विचलित हो; न—नहीं; आत्मानम्—स्वयं का; अन्तिके—पास ही(स्थित); उमाम्—अपनी पत्नी उमा को; स्व-गणान् च—तथा अपने पार्षदों को; वेद—शिवजी जान सके।

जब शिवजी इस सुन्दर स्त्री को गेंद खेलते हुए देख रहे थे, तब वह कभी इन पर दृष्टि डालती और लज्जा से थोड़ा हँस देती। ज्योंही शिवजी ने उस सुन्दर स्त्री को देखा और उसने इन्हें ताका त्योंही वे स्वयं को तथा अपनी सर्वसुन्दर पत्नी उमा और अपने निकटस्थ पार्षदों को भूल गये।

तात्पर्य : इस जगत का भवबन्धन यही है कि सुन्दर स्त्री सुन्दर पुरुष को और सुन्दर पुरुष सुन्दर स्त्री को मोह सकते हैं। जब शिवजी ने सुन्दर बाला को गेंद खेलते देखा तो ऐसा ही होने लगा। ऐसे मामलों में कामदेव का प्रभाव अत्यन्त प्रधान रहता है। जब दोनों पक्ष अपनी भौंहें हिलाते हैं और एक दूसरे पर दृष्टिपात करते हैं, तो उनकी कामवासना उग्र होती जाती है। इस प्रकार की कामवासना का आदान-प्रदान शिवजी तथा उस सुन्दर स्त्री के बीच हुआ यद्यपि उमा तथा शिवजी के गण उनके पास ही थे। ऐसा है भौतिक संसार में पुरुष तथा स्त्री के बीच आकर्षण। शिवजी को ऐसे आकर्षण से ऊपर माना जाता है, किन्तु वे भी भगवान् विष्णु की मोहिनी शक्ति के शिकार बन गए। ऋषभदेव ने वासनापूर्ण आकर्षणमय प्रकृति का वर्णन इस प्रकार किया है—

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं

तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः।

अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तै-

र्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति॥

"पुरुष तथा स्त्री का आकर्षण जगत का मूल सिद्धान्त है। इसी भ्रान्त धारणा के आधार पर जो स्त्री-पुरुष के हृदयों को बाँधती है, मनुष्य अपने शरीर, घर, सम्पत्ति, सन्तान, सम्बन्धी तथा धन से आकृष्ट होता है। इस तरह जीवन का मोह बढ़ता जाता है और मनुष्य 'मैं तथा मेरा' के रूप में सोचने लगता है (*भागवत्* ५.५.८)। जब स्त्री तथा पुरुष कामभावनाओं का आदान-प्रदान करते हैं, तो दोनों ही पीड़ित हो उठते हैं और इस तरह वे इस संसार से विविध प्रकार से बद्ध जाते हैं।

तस्याः करााग्रात्स तु कन्दुको यदा
गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः ।
वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्
भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥ २३॥

शब्दार्थ

तस्याः—उस सुन्दरी के; कर-अग्रात्—हाथ से; सः—वह; तु—लेकिन; कन्दुकः—गेंद; यदा—जब; गतः—गया हुआ; विदूरम्—दूर; तम्—उस गेंद को; अनुव्रजत्—पीछे-पीछे चलने लगी; स्त्रियाः—उस स्त्री के; वासः—वस्त्र; स-सूत्रम्—करधनी सहित; लघु—अत्यन्त सुन्दर होने से; मारुतः—मन्द वायु; अहरत्—उड़ा ले गई; भवस्य—शिव का; देवस्य—प्रमुख देवता; किल—निस्सन्देह; अनुपश्यतः—निरन्तर देख रहा था।

जब गेंद उसके हाथ से उछलकर दूर जा गिरी तो वह स्त्री उसका पीछा करने लगी, किन्तु

जब शिवजी इन लीलाओं को देख रहे थे तो अचानक वायु उसके सुन्दर वस्त्र तथा उसकी करधनी को जो उसे ढके हुए थे, उड़ा ले गई।

एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम् ।
दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ॥ २४॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; ताम्—उस; रुचिर-अपाङ्गीम्—आकर्षक अंगों वाली को; दर्शनीयाम्—देखने में सुहावनी; मनोरमाम्—सुगठित; दृष्ट्वा—देखकर; तस्याम्—उस पर; मनः चक्रे—सोचा; विषज्जन्त्याम्—उसके द्वारा आकृष्ट होने के लिए; भवः—शिवजी; किल—निस्सन्देह।

इस प्रकार शिवजी ने उस स्त्री को देखा जिसके शरीर का अंग प्रत्यंग सुगठित था और उस सुन्दर स्त्री ने भी उनकी ओर देखा। अतएव यह सोचकर कि वह स्त्री उनके प्रति आकृष्ट है, शिवजी उसके प्रति अत्यधिक आकृष्ट हो गये।

तात्पर्य : शिवजी उस स्त्री के शरीर का अंग-प्रत्यंग देख रहे थे और वह भी उन्हें निर्निमेष देख रही थी। अतः शिवजी ने सोचा कि वह भी उनकी ओर आकृष्ट है अतएव उन्होंने उसका स्पर्श करना चाहा।

तयापहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः ।
भवान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ॥ २५॥

शब्दार्थ

तया—उसके द्वारा; अपहृत—चुराया गया; विज्ञानः—विवेक; तत्-कृत—उसके द्वारा किया गया; स्मर—मुस्कान से; विह्वलः—उसके लिए पागल होकर; भवान्याः—शिवजी की पत्नी भवानी द्वारा; अपि—यद्यपि; पश्यन्त्याः—ये घटनाएँ देखी जा रही थीं; गत-ह्रीः—सारी लज्जा से रहित; तत्-पदम्—उस स्थान पर, जहाँ पर वह थी; ययौ—गये।

उस स्त्री के साथ रमण करने की कामेच्छा के कारण अपना विवेक खोकर शिवजी उसके लिए इतने पागल हो उठे कि भवानी की उपस्थिति में भी वे उसके पास जाने में तनिक भी नहीं हिचकिचाये।

सा तमायान्तमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ।
निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत ॥ २६॥

शब्दार्थ

सा—वह स्त्री; तम्—शिव को; आयान्तम्—निकट आते हुए; आलोक्य—देखकर; विवस्त्रा—नंगी; व्रीडिता—अत्यन्त लज्जित; भृशम्—इतनी अधिक; निलीयमाना—छिपा रही थी; वृक्षेषु—पेड़ों के बीच में; हसन्ती—हँसती हुई; न—नहीं; अन्वतिष्ठत—एक स्थान पर खड़ी रही।

वह सुन्दरी पहले ही नंगी हो चुकी थी और जब उसने देखा कि शिवजी उसकी ओर चले आ रहे हैं, तो वह अत्यन्त लज्जित हुई। इस तरह वह हँसती रही, किन्तु उसने अपने आपको वृक्षों के बीच छिपा लिया। वह किसी एक स्थान पर खड़ी नहीं रही।

तामन्वगच्छद्भगवान्भवः प्रमुषितेन्द्रियः ।
कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥ २७॥

शब्दार्थ

ताम्—उसका; अन्वगच्छत्—पीछा किया; भगवान्—शिवजी ने; भवः—भव नाम से विख्यात; प्रमुषित-इन्द्रियः—जिनकी इन्द्रियाँ विचलित थीं; कामस्य—कामवासनाओं के; च—तथा; वशम्—वशीभूत; नीतः—होकर; करेणुम्—हथिनी; इव—सदृश; यूथपः—हाथी।

शिवजी की इन्द्रियाँ विचलित थीं और वे कामवासनाओं के वशीभूत होकर उसका पीछा करने लगे जिस तरह कोई कामी हाथी हथिनी का पीछा करता है।

सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वानिच्छतीं स्त्रियम् ।
केशबन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २८॥

शब्दार्थ

सः—शिवजी ने; अनुव्रज्य—उसका पीछा करके; अति-वेगेन—तेजी से; गृहीत्वा—पकड़ कर; अनिच्छतीम्—उसके न चाहने पर भी; स्त्रियम्—स्त्री को; केश-बन्धे—चोटी से; उपानीय—अपने पास खींचकर; बाहुभ्याम्—अपनी भुजाओं से; परिषस्वजे—उसका आलिंगन किया।

तेजी से उसका पीछा करते हुए शिवजी ने उसके बालों का जूड़ा पकड़ लिया और उसे अपने पास खींच लिया। फिर उसके न चाहने पर भी उन्होंने अपनी भुजाओं में भरकर उसका आलिङ्गन कर लिया।

सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ।
इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥ २९॥
आत्मानं मोचयित्वाङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात् ।
प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥ ३०॥

शब्दार्थ

सा—वह स्त्री; उपगूढा—पकड़ी तथा आलिंगन की जाकर; भगवता—शिवजी द्वारा; करिणा—हाथी द्वारा; करिणी—हथिनी; यथा—जिस तरह; इतः ततः—इधर-उधर; प्रसर्पन्ती—साँप की तरह सरकती; विप्रकीर्ण—बिखरे; शिरोरुहा—उसके सिर के

सारे बाल; आत्मानम्—स्वयं को; मोचयित्वा—मुक्त करके; अङ्ग—हे राजा; सुर-ऋषभ—देवताओं में श्रेष्ठ (शिव); भुज-अन्तरात्—अपनी भुजाओं में बाँधकर; प्राद्रवत्—तेजी से भागने लगे; सा—वह; पृथु-श्रोणी—बड़े कूल्हों वाली; माया—अन्तरंगा शक्ति; देव-विनिर्मिता—भगवान् द्वारा प्रकट की गई।

जिस तरह हाथी हथिनी का आलिंगन करता है उसी तरह वह स्त्री, जिसके बाल बिखरे थे, शिवजी द्वारा आलिंगित होकर साँप की तरह सरकने लगी। हे राजा, यह बड़े और ऊँचे नितम्बों वाली स्त्री भगवान् द्वारा प्रस्तुत की गई योगमाया थी। उसने अपने को जिस-तिस भाँति शिवजी के आलिंगन से छुड़ाया और वह भाग गई।

तस्यासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः ।
प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उनका (शिवजी); असौ—शिवजी; पदवीम्—स्थान; रुद्रः—शिवजी; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; अद्भुत-कर्मणः—वह जो अद्भुत कार्य करता है; प्रत्यपद्यत—पीछा करने लगा; कामेन—कामवासना के कारण; वैरिणा इव—शत्रु की तरह; विनिर्जितः—सताया गया।

शिवजी भगवान् विष्णु का जो आश्चर्यजनक कार्य करने वाले हैं और जिन्होंने मोहिनी रूप धारण कर रखा था, ऐसे पीछा करने लगे जैसे वे काम-वासना रूपी शत्रु द्वारा सताये गए हों।

तात्पर्य : शिवजी माया का शिकार नहीं हो सकते। अतः यह समझ लेना चाहिए कि वे भगवान् विष्णु की अन्तरंगा शक्ति से पीड़ित किए जा रहे थे। भगवान् विष्णु अपनी विभिन्न शक्तियों के द्वारा अनेक आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न कर सकते हैं।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते।

स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥

(*श्वेताश्वतर उपनिषद्* ६.८)

भगवान् की शक्तियाँ विभिन्न हैं जिनसे वे अत्यन्त कुशलता से कार्य कर सकते हैं। किसी कार्य को दक्षता से करने हेतु उन्हें सोचना नहीं पड़ता। यद्यपि शिवजी उस नारी से सताये जा रहे थे, किन्तु यह बात समझ लेनी चाहिए कि ऐसा एक नारी नहीं कर रही थी प्रत्युत भगवान् विष्णु स्वयं कर रहे थे।

तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतसः ।
शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावतः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उनका (शिवजी का); अनुधावतः—जो पीछा कर रहा था; रेतः—वीर्य; चस्कन्द—गिरा; अमोघ-रेतसः—उस पुरुष का, जिसका वीर्य-स्खलन कभी निष्फल नहीं जाता; शुष्मिणः—मदान्ध; यूथपस्य—नर हाथी; इव—की भाँति; वासिताम्—गर्भधारण करने में सक्षम हथिनी; अनुधावतः—पीछा करने वाला.

जिस प्रकार गर्भधारण करने में सक्षम हथिनी का पीछा मदान्ध हाथी करता है, उसी तरह शिवजी उस सुन्दर स्त्री का पीछा कर रहे थे। यद्यपि उनका वीर्य व्यर्थ में स्खलित नहीं होता, किन्तु इस अवसर पर उनका वीर्य स्खलित हो गया।

यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ।
तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जहाँ; यत्र—जहाँ; अपतत्—गिरा; मह्याम्—भूमि पर; रेतः—वीर्य; तस्य—उसका; महा-आत्मनः—महापुरुष (शिव) का; तानि—उन स्थानों का; रूप्यस्य—चाँदी की; हेम्नः—सोने की; च—तथा; क्षेत्राणि—खानें; आसन्—बन गईं; मही-पते—हे राजा।.

हे राजा! पृथ्वी पर जहाँ-जहाँ महापुरुष शिवजी का वीर्य गिरा वहीं-वहीं बाद में सोने तथा चाँदी की खानें प्रकट हो गईं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि जो लोग चाँदी-सोना चाहते हैं, वे भौतिक ऐश्वर्य के लिए शिवजी की पूजा कर सकते हैं। शिवजी बेल वृक्ष के नीचे रहते हैं और अपने रहने के लिए घर तक नहीं बनाते। यद्यपि स्वयं वे निर्धन हैं, किन्तु कभी-कभी अपने भक्तों को प्रचुर मात्रा में सोना-चाँदी प्रदान करते हैं। बाद में जब परीक्षित महाराज इसके विषय में जिज्ञासा करते हैं, तो श्री शुकदेव गोस्वामी उसका उत्तर देते हैं।

सरित्सरःसु शैलेषु वनेषूपवनेषु च ।
यत्र क्व चासन्नृषयस्तत्र सन्निहितो हरः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

सरित्—नदी के किनारों के निकट; सरःसु—तथा झीलों के निकट; शैलेषु—पर्वतों के पास; वनेषु—जंगलों में; उपवनेषु—उद्यानों या छोटे जंगलों में; च—भी; यत्र—जहाँ; क्व—कहीं; च—भी; आसन्—विद्यमान थे; ऋषयः—ऋषिगण; तत्र—वहाँ; सन्निहितः—उपस्थित थे; हरः—शिवजी।.

शिवजी मोहिनी का पीछा करते हुए नदियों तथा झीलों के किनारे, पर्वतों, जंगलों, उद्यानों के पास तथा जहाँ कहीं ऋषिमुनि रह रहे थे, गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि मोहिनी-मूर्ति शिवजी को बहुत से स्थानों तक घसीट लाई, विशेष कर जहाँ महान् ऋषि रहते थे जिससे उन्हें शिक्षा दी जा सके कि उनके

शिवजी एक सुन्दरी के पीछे पागल हो गए हैं। इस प्रकार यद्यपि वे सभी ऋषि तथा साधु पुरुष थे, उन्हें अपने आपको मुक्त नहीं समझना चाहिए अपितु सुन्दर स्त्रियों से अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। सुन्दरी की उपस्थिति में किसी को अपने आपको मुक्त नहीं समझना चाहिए। शास्त्रों का आदेश है—

मात्रा श्वस्र दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।

बलवान् इन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

''मनुष्य को स्त्री के साथ एकान्त स्थान में नहीं रहना चाहिए भले ही वह उसकी माता, बहन या पुत्री क्यों न हो क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी बलवान् हैं कि स्त्री की उपस्थिति में वह विचलित हो सकता है चाहे कोई कितना ही विद्वान तथा उन्नत क्यों न हो।'' (*भागवत* ९.१९.१७)

स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ।
जडीकृतं नृपश्रेष्ठ सन्न्यवर्तत कश्मलात् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

स्कन्ने—पूर्णतया स्खलित होने पर; रेतसि—वीर्य; सः—शिवजी ने; अपश्यत्—देखा; आत्मानम्—अपने को; देव-मायया—भगवान् की माया से; जडीकृतम्—मूर्ख की भाँति वशीभूत हुआ; नृप-श्रेष्ठ—हे राजाओं में श्रेष्ठ (महाराजपरीक्षित); सन्न्यवर्तत—अपने को आगे बढ़ने से रोका; कश्मलात्—मोह से।

हे राजश्रेष्ठ महाराज परीक्षित! जब शिवजी का वीर्य पूर्णतया स्खलित हो गया तो उन्होंने देखा कि वे किस प्रकार भगवान् द्वारा उत्पन्न माया के द्वारा वशीभूत हो गए। इस तरह उन्होंने अपने आपको माया द्वारा और अधिक वशीभूत होने से रोका।

तात्पर्य : जब कोई व्यक्ति किसी स्त्री को देखकर कामवासनाओं से विचलित होता है, तो ये वासनाएँ बढ़ती ही जाती हैं, किन्तु जब मैथुन द्वारा वीर्य स्खलित हो जाता है, तो ये कामवासनाएँ शमित हो जाती हैं। यही सिद्धान्त शिवजी पर भी लागू हुआ। वे मोहिनी-मूर्ति नामक सुन्दर स्त्री द्वारा आकृष्ट हुए थे, किन्तु जब उनका वीर्य पूरी तरह स्खलित हो गया तो उन्हें चेतना आई और यह अनुभव हुआ कि जंगल में उस स्त्री को देखते ही वे किस तरह उसके वशीभूत हो गये थे। यदि किसी को ब्रह्मचर्य-पालन द्वारा वीर्य-रक्षा करने का प्रशिक्षण दिया जाये तो वह स्वभावत: स्त्री की सुन्दरता द्वारा आकृष्ट नहीं होता। यदि कोई ब्रह्मचारी रह सके तो वह संसार के कष्टों से अपने को बचा सकता है। संसार का अर्थ है मैथुन-सुख का आनन्द उठाना (*यन् मैथुनादि गृहमेधिसुखम्*)। यदि मनुष्य को मैथुन-जीवन के बारे शिक्षा दी जाय और उसे वीर्य रक्षा करने के लिए प्रशिक्षित किया जाये तो वह

संसार के संकट से बच जाता है।

अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ।
अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदु हाद्भुतम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

अथ—इस प्रकार; अवगत—आश्वस्त होकर; माहात्म्यः—महानता; आत्मनः—अपनी; जगत्-आत्मनः—तथा भगवान् की; अपरिज्ञेय-वीर्यस्य—असीम शक्तिमान; न—नहीं; मेने—विचार किया; तत्—मोहित करने में भगवान् के अद्भुत कार्यकलापों को; उ ह—निश्चय ही; अद्भुतम्—मानो अद्भुत।

इस प्रकार शिवजी को अपनी तथा असीम शक्तिमान भगवान् की स्थिति का बोध हो गया। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर उन्हें तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ कि भगवान् विष्णु ने किस अद्भुत विधि से उन पर माया का जाल फैलाया था।

तात्पर्य : भगवान् सर्वशक्तिमान कहलाते हैं क्योंकि कोई भी उन्हें किसी भी कार्य में पिछाड़ नहीं सकता। *भगवद्गीता* (७.७) में भगवान् कहते हैं—*मत्तः परतरं नान्यत किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—हे धन के विजेता! मुझसे बढ़कर कोई सत्य नहीं है। कोई न तो भगवान् की बराबरी कर सकता है, न ही उनसे बढ़कर है क्योंकि वे सबके स्वामी हैं। जैसाकि *चैतन्य-चरितामृत* (*आदि* ५.१४२) में कहा गया है—*एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*—भगवान् कृष्ण सबके, यहाँ तक कि शिवजी के भी, एकमात्र स्वामी हैं, तो फिर अन्यों के लिए क्या कहा जाये? शिवजी पहले से भगवान् विष्णु की परम शक्ति से अवगत थे, किन्तु जब वे सचमुच मोह में पड़ गये तो उन्हें अपने महान् स्वामी पर गर्व हुआ।

तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः ।
उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (शिवजी को); अविक्लवम्—इस घटना से विचलित हुए बिना; अव्रीडम्—बिना लज्जा के; आलक्ष्य—देखकर; मधु-सूदनः—मधु राक्षस का वध करने वाले भगवान् ने; उवाच—कहा; परम-प्रीतः—अत्यधिक प्रसन्न होकर; बिभ्रत्—धारण करके; स्वाम्—अपना; पौरुषीम्—मूल; तनुम्—रूप।

शिवजी को अविचलित एवं लज्जारहित देखकर भगवान् विष्णु (मधुसूदन) अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब उन्होंने अपना मूल रूप धारण कर लिया और वे इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : यद्यपि शिवजी भगवान् विष्णु की शक्ति से चकित थे, किन्तु उन्होंने लज्जा का अनुभव नहीं किया। बल्कि वे भगवान् विष्णु द्वारा पराजित होने से गर्वित थे। भगवान् से कुछ भी छिपा नहीं है

क्योंकि वे जन-जन के हृदय में वास करने वाले हैं। निस्सन्देह, *भगवद्गीता* (१५.१५) में भगवान् कहते हैं—*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*—मैं हर एक के हृदय में आसीन हूँ और मुझ से ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होती है। जो कुछ भी घटित हुआ था वह सब भगवान् के निर्देशानुसार हुआ था अतएव खिन्न होने या लज्जित होने का कोई कारण नहीं था। यद्यपि शिवजी किसी से पराजित नहीं होते, किन्तु जब वे भगवान् विष्णु द्वारा पराजित हो गये तो उन्हें गर्व का अनुभव हुआ कि उनके स्वामी इतने महान् तथा शक्तिमान हैं।

श्रीभगवानुवाच
दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः ।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; दिष्ट्या—कल्याण हो; त्वम्—तुम्हारा; विबुध-श्रेष्ठ—हे समस्त देवताओं में श्रेष्ठ; स्वाम्—अपनी; निष्ठाम्—स्थिर दशा में; आत्मना—अपने आप; स्थितः—स्थित हो; यत्—क्योंकि; मे—मेरे; स्त्री-रूपया—स्त्री जैसे स्वरूप से; स्वैरम्—पर्याप्त; मोहितः—सम्मोहित; अपि—होते हुए भी; अङ्ग—हे शिवजी; मायया—मेरी शक्ति के द्वारा।

भगवान् ने कहा : हे देवताओं में श्रेष्ठ! यद्यपि तुम मेरे द्वारा स्त्रीरूप धारण करने की मेरी शक्ति द्वारा अत्यधिक पीड़ित हुए हो, किन्तु तुम अपने पद पर स्थिर हो। अतएव तुम्हारा कल्याण हो।

तात्पर्य : चूँकि शिवजी समस्त देवताओं में श्रेष्ठ हैं अतएव वे समस्त भक्तों में भी श्रेष्ठ हैं (*वैष्णवानाम् यथा शम्भुः*)। अतएव उनके आदर्श चरित्र की भगवान् ने प्रशंसा की और उन्हें यह कहकर वरदान दिया 'तुम्हारा कल्याण हो।' जब कोई भक्त कुछ-कुछ गर्वित हो उठता है, तो कभी-कभी भगवान् भक्त के भ्रम को दूर करने के लिए अपनी परम शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। भगवान् विष्णु की शक्ति द्वारा पर्याप्त सताये जाने के बाद शिवजी ने अपना सामान्य अविचल रूप धारण कर लिया। भक्त की यह स्थिति है। भक्त को किसी परिस्थिति में भी विचलित नहीं होना चाहिए। जैसी कि *भगवद्गीता* (६.२२) में पुष्टि की गई है—*यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते*—भगवान् में पूर्ण श्रद्धा होने से भक्त बड़ी से बड़ी परीक्षा में भी कभी विचलित नहीं होता। ऐसी निरभिमानिता उच्चकोटि के भक्तों में ही सम्भव है जिनमें भगवान् शम्भु एक हैं।

को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् ।
तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

कः—क्या; नु—निस्सन्देह; मे—मेरा; अतितरेत्—पार पा सकता है; मायाम्—माया को; विषक्तः—भौतिक इन्द्रिय-भोग में आसक्त; त्वत्-ऋते—आपके अतिरिक्त; पुमान्—व्यक्ति; तान्—ऐसी दशाओं; तान्—आसक्त पुरुषों को; विसृजतीम्—पार कर सकने में; भावान्—भौतिक कार्यकलापों के फलों को; दुस्तराम्—पार कर पाना दुष्कर; अकृत-आत्मभिः—अपनी इन्द्रियों को वश में करने में असमर्थ व्यक्तियों द्वारा।

हे प्रिय शम्भु! इस भौतिक जगत में तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो मेरी माया से पार पा सके? सामान्यतया लोग इन्द्रियभोग में आसक्त रहते हैं और इसके प्रभाव में फँस जाते हैं। निस्सन्देह, उनके लिए माया के प्रभाव को लाँघ पाना अत्यन्त कठिन है।

तात्पर्य : तीन प्रमुख देवताओं—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर में से विष्णु को छोड़कर सभी माया के वश में हैं। *चैतन्य-चरितामृत* में उन्हें मायी कहा गया है, जिसका अर्थ है ''माया के प्रभाव में।'' किन्तु यद्यपि शिवजी माया के संग रहते हैं, वे उससे प्रभावित नहीं होते। सारे जीव माया द्वारा प्रभावित होते हैं, किन्तु शिवजी माया के साथ रहते हुए भी प्रभावित नहीं होते। दूसरे शब्दों में, इस संसार में शिवजी के अतिरिक्त सारे जीव माया द्वारा विचलित हो जाते हैं। अतएव शिवजी न तो *विष्णु-तत्त्व* हैं न *जीवतत्त्व*। वे इन दोनों के बीच में हैं।

सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ।
मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

सा—वह दुर्लंघ्य; इयम्—यह; गुण-मयी—प्रकृति के तीनों गुणों से युक्त; माया—माया; न—नहीं; त्वाम्—तुमको; अभिभविष्यति—भविष्य में मोहित करने में समर्थ होगी; मया—मेरे साथ; समेता—संयुक्त; कालेन—नित्य समय द्वारा; काल-रूपेण—काल के रूप में; भागशः—अपने विभिन्न अंशों सहित।

यह भौतिक बहिरंगा शक्ति (माया), जो सृष्टि में मुझे सहयोग देती है और प्रकृति के तीनों गुणों में प्रकट होती है अब तुम्हें मोहित नहीं कर सकेगी।

तात्पर्य : शिवजी के साथ उनकी पत्नी दुर्गा भी वहाँ उपस्थित थीं। दुर्गाजी इस दृश्य जगत की सृष्टि करते समय भगवान् को सहयोग देती हैं। भगवान् *भगवद्गीता* (९.१०) में कहते हैं—*मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—हे कुन्तीपुत्र! यह प्रकृति मेरे निर्देशन में कार्य करती है और सारे चर तथा अचर प्राणियों को जन्म देती हैं। यह प्रकृति दुर्गा है।

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका

छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा

सारे ब्रह्माण्ड की रचना दुर्गाजी द्वारा काल-रूप विष्णु के सहयोग से की जाती है। *स ईक्षत लोकान्नु सृजा। स इमाँल्लोकान् असृजत।* यह वेदों का (*ऐतरेय उपनिषद्* १.१, १-२) कथन है। माया को शिवजी की पत्नी होने का सौभाग्य प्राप्त है। इस तरह शिवजी का सान्निध्य माया से है, किन्तु यहाँ पर भगवान् विष्णु शिवजी को यह विश्वास दिलाते हैं कि अब यह माया उन्हें मोहित नहीं कर सकेगी।

श्रीशुक उवाच
एवं भगवता राजन्श्रीवत्साङ्केन सत्कृतः ।
आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; राजन्—हे राजा; श्रीवत्स-अङ्केन—अपने वक्षस्थल पर श्रीवत्स-चिह्न धारण करने वाले; सत्-कृतः—अत्यन्त प्रशंसित होकर; आमन्त्र्य—अनुमति लेकर; तम्—उसको; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; स-गणः—अपने गणों समेत; स्व-आलयम्—अपने धाम को; ययौ—वापस चले गये।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! वक्षस्थल पर श्रीवत्स-चिन्ह धारण करने वाले भगवान् द्वारा इस प्रकार प्रशंसित होकर शिवजी ने उनकी परिक्रमा की। फिर उनकी अनुमति लेकर शिवजी अपने गणों सहित अपने धाम कैलास लौट गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि जब शिवजी भगवान् विष्णु को नमस्कार कर रहे थे तो भगवान् विष्णु ने उठकर उन्हें गले लगा लिया। इसीलिए यहाँ पर *श्रीवत्साङ्केन शब्द* प्रयुक्त हुआ है। श्रीवत्स-चिह्न भगवान् विष्णु के वक्षस्थल को सुशोभित करता है; अतएव जब शिवजी ने भगवान् विष्णु की परिक्रमा की और भगवान् विष्णुने उनका आलिंगन किया, तो श्रीवत्स-चिह्न शिवजी की छाती को छू गया।

आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ।
सम्मतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथ भारत ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

आत्म-अंश-भूताम्—परमात्मा की शक्ति; ताम्—उस; मायाम्—माया को; भवानीम्—शिवजी की पत्नी को; भगवान्—शक्तिमान; भवः—शिवजी; सम्मताम्—स्वीकार किया हुआ; ऋषि-मुख्यानाम्—महान् ऋषियों द्वारा; प्रीत्या—हर्ष सहित; आचष्ट—सम्बोधित किया; अथ—तब; भारत—हे भरतवंशी महाराज परीक्षित।

हे भरतवंशी महाराज! तब शिवजी ने परम प्रसन्न होकर अपनी पत्नी भवानी को सम्बोधित

किया जो सभी अधिकारियों द्वारा भगवान् विष्णु की शक्ति के रूप में स्वीकार की जाती हैं।

अयि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां
परस्य पुंसः परदेवतायाः ।
अहं कलानामृषभोऽपि मुह्यो
ययावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

अयि—ओह; व्यपश्यः—देखा है; त्वम्—तुमने; अजस्य—अजन्मा का; मायाम्—माया को; परस्य पुंसः—परम पुरुष का; पर-देवतायाः—परम सत्य; अहम्—मैं; कलानाम्—स्वांशों का; ऋषभः—प्रमुख; अपि—यद्यपि; मुह्यो—मोहित हो गया; यया—जिसके द्वारा; अवशः—अवश; अन्ये—अन्य; किम् उत—क्या कहा जाये; अस्वतन्त्राः—माया पर पूरी तरह आश्रित।

शिवजी ने कहा : हे देवी! अब तुमने भगवान् की माया देख ली है, जो सबके अजन्मा स्वामी हैं। यद्यपि मैं उनके प्रमुख विस्तारों में से एक हूँ तो भी मैं उनकी शक्ति से भ्रमित हो गया था। तो फिर, उन लोगों के विषय में क्या कहा जाये जो माया पर पूर्णतः आश्रित हैं?

यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्
समासहस्रान्त उपारतं वै ।
स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो
न यत्र कालो विशते न वेदः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

यम्—जिसके विषय में; माम्—मुझसे; अपृच्छः—पूछा; त्वम्—तुमने; उपेत्य—पास आकर; योगात्—योग साधन से; समा—वर्ष; सहस्र-अन्ते—एक हजार के अन्त में; उपारतम्—समाप्त होकर; वै—निस्सन्देह; सः—वह; एषः—यहाँ है; साक्षात्—प्रत्यक्ष; पुरुषः—परम पुरुष; पुराणः—आदि; न—नहीं; यत्र—जहाँ; कालः—काल; विशते—प्रवेश कर सकता है; न—नहीं; वेदः—वेद।

जब मैंने एक हजार वर्षों की योग-साधना पूरी कर ली तो तुमने मुझसे पूछा था कि मैं किसका ध्यान कर रहा था। अब ये वही परम पुरुष हैं जिन तक काल नहीं पहुँच पाता और जिन्हें वेद नहीं समझ पाते।

तात्पर्य : काल सर्वत्र प्रवेश कर जाता है, किन्तु वह भगवद्धाम में प्रविष्ट नहीं हो सकता। वेद भी भगवान् को नहीं समझ पाते। यह भगवान् के सर्व-शक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञ होने का संकेत है।

श्रीशुक उवाच
इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ।
सिन्धोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; ते—तुमको; अभिहितः—बताया गया; तात—हे राजा; विक्रमः—पराक्रम; शार्ङ्ग-धन्वनः—शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले भगवान् का; सिन्धोः—क्षीरसागर के; निर्मथने—मन्थन में; येन—जिससे; धृतः—धारण किया गया था; पृष्ठे—पीठ पर; महा-अचलः—विशाल पर्वत।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा! जिस पुरुष ने क्षीरसागर के मन्थन के लिए अपनी पीठ पर महान् पर्वत धारण किया था वही शार्ङ्गधन्वा नामक भगवान् हैं। मैंने तुमसे अभी उन्हीं के पराक्रम का वर्णन किया है।

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो
न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ।
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं
समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह कथा; मुहुः—निरन्तर; कीर्तयतः—कीर्तन करने वाले का; अनुशृण्वतः—तथा सुनने वाले का है; न—नहीं; रिष्यते—विनाश किया जाता है; जातु—किसी समय; समुद्यमः—प्रयास; क्वचित्—किसी समय; यत्—क्योंकि; उत्तमश्लोक—भगवान् का; गुण-अनुवर्णनम्—दिव्य गुणों का वर्णन करते हुए; समस्त—सभी; संसार—संसार का; परिश्रम—कष्ट; अपहम्—समाप्त करने वाला।

जो कोई क्षीरसागर के मन्थन की इस कथा को निरन्तर सुनता या सुनाता है, उसका प्रयास कभी भी निष्फल नहीं होगा। निस्सन्देह, भगवान् के यश का कीर्तन इस भौतिक संसार में समस्त कष्टों को ध्वस्त करने का एकमात्र साधन है।

असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्ना-
नमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् ।
कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारीं-
स्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

असत्-अविषयम्—नास्तिकों की समझ में न आने वाला; अङ्घ्रिम्—भगवान् के चरणकमलों को; भाव-गम्यम्—भक्तों की समझ में आने वाला; प्रपन्नान्—पूर्णतया शरणागत; अमृतम्—अमृत; अमर-वर्यान्—केवल देवताओं को; आशयत्—पीने के लिए; सिन्धु-मथ्यम्—क्षीरसागर से उत्पन्न; कपट-युवति-वेषः—मिथ्या तरुणी के रूप में प्रकट होकर; मोहयन्—मोहते हुए; यः—जो; सुर-अरीन्—देवताओं के शत्रुओं को; तम्—उसको; अहम्—मैं; उपसृतानाम्—भक्तों का; काम-पूरम्—समस्त इच्छाओं को पूरा करने वाला; नतः अस्मि—मैं नमस्कार करता हूँ।

एक तरुण स्त्री का रूप धारण करके तथा इस प्रकार असुरों को मोहित करके भगवान् ने अपने भक्तों अर्थात् देवताओं को क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न अमृत बाँट दिया। मैं उन भगवान् को जो अपने भक्तों की इच्छाओं को सदा पूरा करते हैं अपना सादर नमस्कार अर्पित करता हूँ।

तात्पर्य : क्षीरसागर के मन्थन सम्बन्धी इस कथा का उपदेश भगवान् द्वारा स्पष्टत: वर्णन किया गया है। यद्यपि वे सब पर समभाव रखते हैं, किन्तु स्वाभाविक स्नेह के कारण वे अपने भक्तों का पक्ष लेते हैं। भगवान् *भगवद्गीता* (९.२९) में कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय:।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

''मैं न तो किसी से ईर्ष्या करता हूँ, न किसी का पक्षपात करता हूँ। मैं तो सबके लिए समान हूँ। किन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह मेरा मित्र है, वह मुझमें है और मैं भी उसका मित्र हूँ।'' भगवान् का यह पक्षपात स्वाभाविक है। कोई भी व्यक्ति अपने बच्चों की परवाह पक्षपात के कारण नहीं करता अपितु प्रेम के आदान-प्रदान के कारण करता है। बच्चे पिता के स्नेह पर आश्रित रहते हैं और पिता स्नेह से बच्चों का पालन करता है। इसी प्रकार चूँकि भक्त भगवान् के चरणकमलों के अतिरिक्त और कुछ मी नहीं जानते अतएव भगवान् अपने भक्तों की रक्षा करने तथा उनकी इच्छाओं को पूरा करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। अतएव वे कहते हैं—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त: प्रणश्यति*—हे कुन्तीपुत्र! निर्भीक होकर घोषणा कर दो कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के अन्तर्गत ''मोहिनी-मूर्ति अवतार पर शिवजी का मोहित होना'' नामक बारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।